झालावाड़ क्षेत्र के महत्वपूर्ण शिलालेख

ललित शर्मा

प्राचीन खण्डहरों और सिक्कों की भांति इतिहास की प्रामाणिक जानकारी के लिए शिलालेख भी एक महत्वपूर्ण और विश्वसनीय साधन है। अनेक स्थानों पर जहां इतिहास मूक और अस्पष्ट होता है, वहां शिलालेखों से ही जानकारियां प्राप्त होती है, इसलिए 'बोलते पत्थर' कहकर इनकी महत्ता को स्वीकारा गया है। शिलालेख बहुधा खण्डहर हो चुकी इमारतों, मंदिरों, भू-गर्भ में दबी बस्तियों, टीलों, बावड़ियों, स्तम्भों, मठों, स्तूपों तथा खेतों आदि के मध्य गढ़ी शिलाओं पर प्राप्त होते हैं। इनकी खोज और प्राप्ति तथा अध्ययन में पैनी दृष्टि से एक-एक शब्द के प्रति उन्मुक्त सोच, पठन, शुद्धिकरण तथा इनकी पूर्णता इतिहास का सबसे अधिक दुष्कर कार्य है। ऐसे दुष्कर मन्थन के बाद ही इनसे तत्कालीन संस्कृति, शासकों के वंशक्रम, उनकी उपलब्धियां व अनेक विशिष्ट कार्यों का प्रामाणिक एवं सर्वमान्य विवरण प्राप्त होता है।

उल्लेखनीय है कि इतिहास के अलग-अलग कालखण्डों में अलग-अलग लिपियां मत-मतान्तर प्रचलित रहे है। अत: इन सभी की शैली भी इनमें प्रयुक्त होती है जिससे तत्कालीन भाषा तथा विचारों का कार्य उद्देश्य प्रचुरता से प्राप्त होता है। प्रस्तुत पुरा-प्रसंग में झालावाड़ क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न नगरों, कस्बों तथा गांवों आदि से प्राप्त विक्रम की 5वीं सदी से 19वीं सदी के अन्त तक के शिलालेखों का संक्षिप्त परिचयात्मक वर्णन है, जिससे इनकी ऐतिहासिक उपयोगिता का सृजन हो सके।

राजस्थान के झालावाड़ क्षेत्र का सबसे प्राचीन और भारतीय पुरातत्त्ववेत्ताओं में चर्चित शिलालेख मुख्यालय से 127 किलोमीटर दूर पश्चिम में छोटी कालीसिंध नदी के तट पर बसे 'गंगधार' कस्बे का है। दक्षिण शैली में उत्कीर्ण इस शिलालेख में ''कार्तिक शुक्ल त्रयोदशी'' मालव (विक्रम) संवत् 480 (सन् 423 ई.) का उल्लेख है,[1] जो ''कृतेषु चतुर्ष'' से आरम्भ होता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि मालव और विक्रम संवत् को परवर्ती पुराविद्ों द्वारा एक ही माना गया है।

ईसा की पांचवी सदी का यह शिलालेख इस क्षेत्र में तत्कालीन शासक नरवर्मन के पुत्र विश्ववर्मा का है। 'वर्मान्त नाम वाले शासक औलिकरवंशी थे, जो गुप्त शासकों के शक्तिशाली सहायक सामन्तों के रूप में इतिहास प्रसिद्ध रहें। ज्ञातव्य है कि पांचवीं सदी से

भी पूर्व गंगधार दशपुर (मन्दसौर) क्षेत्र की उपराजधानी के रूप में प्रसिद्ध रहा है। दशपुर के औलिकरवंशी सामन्त नरवर्मन (407-417 ई.) जिसे अभिलेखों में 'स्वतन्त्र नृप' भी माना गया तथा जो गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय (375-414 ई.) का सहयोगी था, के समय राजस्थान और मालवा का अधिकांश भू-भाग गुप्तों के अधीन हो गया था। इनके काल में औलिकरवंशी सामन्तों का वर्णन 'स्वतन्त्र-नृप' के रूप में हुआ। ये दोनों ही वैष्णव तथा बौद्ध मत के समर्थक एवं स्वयं पारस्परिक सहयोगी थे, अत: गुप्तों ने इन सामन्तों की आन्तरिक शासन व्यवस्था में कभी हस्तक्षेप नहीं किया। चूंकि औलिकर मालवों की शाखा में थे, इसलिए वे अन्त तक मालव संवत् को ही अपनाते रहे। उल्लेखनीय होगा कि गंगधार से दशपुर (मन्दसौर) की दूरी मात्र 62 किमी. पश्चिम दिशा में है। इससे यह संभावना भी पुष्ट होती है कि दशपुर की मालव संस्कृति का पूर्ण प्रभाव गंगधार पर दीर्घावधि तक रहा है।

पुरातत्त्ववेता जॉन फैथफुल फ्लीट द्वारा कर्नल मुईर के माध्यम से खोजे व पठन किये गये इस शिलालेख में अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख है। फ्लीट के अनुसार ''औलि'' का अर्थ ''उष्ण'' अथवा ''शीत'' तथा ''कर'' का अर्थ ''किरण'' है। संभवत: उसका यह संकेत सूर्य तथा चन्द्रवंश की ओर भी माना जा सकता है।

पूर्वोक्त नरवर्मन के पुत्र विश्ववर्मन (417-435 ई.) के इस शिलालेख में उसका 'स्वतन्त्र शासक' के रूप में गुणगान अंकित है। वह गुप्त सम्राट कुमारगुप्त (415-455 ई.) का सहयोगी सामन्त था। लेख में विश्ववर्मा के धैर्य एवं बुद्धि की तुलना बृहस्पति, भगीरथ, राम एवं चन्द्रप्रभा से की गई है।

बुद्धया-बृहस्पति समरस कलेन्दुवस्त्र:।।
औपम्यभूत इव राम भागीरथाभयां रा।

(भावार्थ:- ''नरवर्मन का पुत्र विश्ववर्मन बुद्धि में बृहस्पति के सदृश्य, पूर्ण चन्द्र के समान मुख वाला मानो राम तथा भगीरथ के लिए प्रमाण रूप हो।'')

इस लेख से ज्ञात होता है कि विश्ववर्मन ने भी अपने यशस्वी पिता की भांति गंगधार की सर्वोन्नति में योगदान दिया था। उसके समय में यह स्थान सौन्दर्य में नववधू की भांति पुष्पों, वाटिकाओं, दीर्घकाओं, कूपों और तड़ागों से सुसज्जित था। उसका मंत्री मयूराक्षक बुद्धि एवं शौर्य में बेजोड़ था। उसने अपने पुत्रों क्रमश: विष्णुभट्ट एवं हरिभट्ट सहित यहां (गंगधार में) वैष्णव मतावलम्बियों के लिये चक्रगदाधारी विष्णु का मंदिर तथा तान्त्रिकों के लिए डाकिनी सर्पकीर्ण सप्तमातृका मंदिर तथा जनहिताय वापी (बावड़ी) का निर्माण करवाया था। यहां यह बात भी संज्ञान में लाने योग्य मानी जा सकती है कि गंगधार

के इस शिलालेख का ही यह प्रताप है कि हम यह अधिकारपूर्वक गर्व से जताने में सबसे अग्रणीय हो जाते है कि इस गंगधार से पूर्व सम्पूर्ण राजस्थान से बाहर के किसी भी प्रदेश में मातृका पूजालय की कोई भी प्रामाणिक चर्चा अभी तक पुरातत्त्ववेताओं की खोज में नहीं आ पायी है। इस शिलालेख से शक्ति पूजा में तान्त्रिक प्रभाव के आरम्भ का भी बोध होता है, जो इस लेख में वर्णित तन्त्र, डाकिनी तथा *वेश्मत्युग्रम* (अर्थात भयानक मंदिर) आदि शब्दों से होता है। झालावाड़ के पुरा-संग्रहालय में संरक्षित यह शिलालेख प्राचीन भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की अमूल्य निधि है, क्योंकि इसमें नदी के किनारे पर नगर बसाने के साथ-साथ सामन्ती व्यवस्था, पर्यावरण समृद्धि के लिये क्रियान्विति, धर्म, मत, जनहित तथा राजव्यवस्था का उल्लेख है। साथ ही यह लेख दक्षिण शैली, जो प्राचीन कालपरक शैली के रूप में राजस्थान और मालवा में प्रचलित थी, का भी प्रमाण है।

गंगधार में वि.सं. 1699 तथा 1726 के दो शिलालेख ग्यारह-ग्यारह पंक्तियों में प्राकृत (अपभ्रंश) मिश्रित शैली में प्राप्त हुए है, जो यहां के तत्कालीन शासक झाला दयालदास के काल में सम्बन्धित है। इनमें मुग़ल सम्राट शाहजहां का भी उल्लेख आता है। इन शिलालेखों में एक बावड़ी को गऊ (गाय) तथा ब्राह्मणों के लिये बनाने का उल्लेख है।[2] इसी कस्बें के निकट बने दलसागर तालाब के किनारे स्थित छत्री चबूतरे पर एक शिलालेख वि.सं. 1723 का है। इसमें एक पुरूष तथा तीन महिलाओं के चित्र ऊकेरे हुए है। इस लेख में झाला दयालदास के साथ-साथ उसकी तीनों रानियों के सती होने का नामोल्लेख है। इस लेख को उसके पुत्र झाला प्रताप सिंह ने उत्कीर्ण करवाया था।[3]

मुख्यालय झालावाड़ से 8 किलोमीटर दूर दक्षिण में झालरापाटन नगरी के निकट और चन्द्रभागा नदी के किनारे स्थित प्राचीन नगरी चन्द्रावती, मन्दिरों, मूर्तियों एवं कलापूर्ण स्तम्भों के रूप में स्थित है। यहां कला अलंकरण से सुसज्जित मुख्य मंदिर 'श्री चन्द्रमौलीश्वर महादेव' का है, जो समूचे राजस्थान प्रदेश के तिथि युक्त मंदिरों में सर्वाधिक प्राचीन माना गया है। इसी देवभवन से प्राप्त तथा झालावाड़ के पुरा-संग्रहालय में संरक्षित एक महत्वपूर्ण शिलालेख वि.सं. 746/689 ई. का है।[4] इसमें चन्द्रावती नगरी का राजा दुर्गगण (उत्तर मौर्य) के अधिकार में रहने का उल्लेख है। इस लेख में ''**बिहुषाम पिबोधकभिन्धान तनेदम का परिचंद्र मौलेर्भवतं**'' लिखा है, जिससे मंदिर में प्रतिष्ठित शिवलिंग का नाम उक्त रूप में प्रचलित होना प्रमाणित होता है। इसी लेख में यह भी अंकित है कि राजा दुर्गगण का भाई शंकरगण (उत्तर मौर्य) भी इस मंदिर के दर्शनार्थ आया था। उक्त शिलालेखानुसार इस मंदिर को इसी नगरी के एक धनिक 'देव के भाई' 'बोप्पक' ने

बनवाया था। यह मंदिर राजस्थान प्रदेश का प्रथम तिथि अंकन युक्त मंदिर तथा 8वीं सदी के लकुलीश सम्प्रदाय प्रमुख की साधना स्थली के रूप में भी उत्तर भारत में मान्य है।

इस मंदिर के मूल गर्भ के बाहर की दीवार पर लगे एक अन्य लेख को पुरातत्त्वेत्ता कनिंघम ने पढ़ा था।[5] लेख की लिपि 7वीं तथा 8वीं सदी की है, जिसमें **''श्रीदृष्टंकेघन्द मलय माणिक्य हिमकेदार''** वाक्य उत्कीर्ण है। मंदिर के 26 कला अलंकृत पाषाण स्तम्भों की दूसरी पंक्ति के चौथे स्तम्भ पर 8वीं सदी की लिपि के 3 इंच ऊंचे अक्षरों में (1) श्री देवज (2) दीर्घाचार्य (3) शंकरगण (4) विक्रयंद शब्द अंकित है। इनमें श्री देवज तथा दीर्घाचार्य लकुलीश मत के आचार्यो के नाम है तथा शंकरगण और विक्रयंद, राजा दुर्गगण के परिवार से सम्बन्धित नाम है। इसी स्तम्भ के पीछे 10वीं तथा 13वीं सदी की लिपि में निम्नांकित नामोल्लेख है, जिनमें (1) साधु श्री मुलसुत (2) सा. सखदेव राज (3) देव प्रणमति निंल (सभी 10वीं सदी) तथा (1) दतियासिजा (2) सुत राउत द प्रणमति (3) राज श्री आलणदेव (4) सुत रा श्री कुसुम दे (5) प्रणमति निलांज (सभी 13वीं सदी के) इसी पंक्ति के तीसरे स्तम्भ पर 8वीं सदी की लिपि में 'देवज' शब्द एंव एक भय लेख उत्कीर्ण है। इसी में (1) साकु छोहड़ (2) सुहसा: कुल्ह (3) गोथा भोजा (4) रानि (5) सातु अवसक (6) प्रणमति जैसी 12वीं सदी की शब्दशैली पठनीय है। इसी पंक्ति के छठे स्तम्भ पर 9वीं सदी की लिपि में **''श्री मौसुक सुत श्री मंचुक''** उत्कीर्ण है। इससे पुरातत्त्ववेत्ताओं का अभिमत है कि 9वीं सदी में मौसुक का पुत्र मंचुक इस मंदिर के दर्शनार्थ आया होगा। मंदिर के एक स्तम्भ पर 10वीं सदी की लिपि में[6] जीवट, मोमा, काकू, सुप्रव जैसे शब्दों के साथ 'सिलावट' शब्द भी उत्कीर्ण है, जिससे इसकी प्राचीनता का बोध होता है। इसी मंदिर के पृष्ठ भाग में स्थित एक मंदिर के स्तम्भ लेख में **''ईशानुज मुख्यालयों लकुलीश इवाभवत''** लिखा हुआ है।[7] जिससे प्रतीत होता है कि ईशानुज कोई शैव आचार्य थे जो लकुलीश मत को मानने वाले थे।

इस मंदिर के समीप ही एक प्राचीन देवी मंदिर है। इसके पाषाण स्तम्भ लता पत्रक एवं पूर्ण घटों से सजे-संवरे है। इन स्तम्भों पर 9वीं से 13वीं सदी की अवधि के लेख उत्कीर्ण है, जिनमें 9वीं सदी की लिपि में शेख प्रणमति, 10सदी की लिपि में (1) रासिल प्रणमति (2) सिवा प्रणमति, 11वीं सदी की लिपि में सर्व देव प्रणमति एवं 13वीं सदी की लिपि में विमुख प्रणमति शब्द उत्कीर्ण है।[8] इन सभी लेखों को आज भी पुरातत्त्व का कोई भी शोधार्थी आसानी से अपने अनुभवजन्य ज्ञान द्वारा पढ़ सकता है।

इसी नगरी में वि.सं. 1143 एवं 1198 के दो और महत्वपूर्ण शिलालेख प्राप्त हुए

है, जिनसे ज्ञात हुआ है कि मालवा प्रदेश के परमार शासकों की गुजरात के शासक सिद्धराज जयसिंह के हाथों हार हो जाने पर भी चन्द्रावती और उसकी निकट काली सिन्ध नदी के आस-पास का क्षेत्र परमारों के ही अधिकार में बना रहा था।

झालरापाटन के उत्तरी छोर पर स्थिति जैन पूजा स्थल क्षेत्र में वि.सं. 1009 का एक शिलालेख[9] है, जो जैन मत के तत्कालीन आचार्य नागराज द्वारा निर्मित करवाया गया था। यह लेख इस क्षेत्र में जैन मत के प्राचीन प्रमाण का उदाहरण है। नगर में स्थिति सर्पसुखिया की कोठी पर 10 पंक्तियों वाले संस्कृत गद्यमयी लिपि में वि.सं. 1143 बैशाख शुक्ला दशमी का शिलालेख उपलब्ध है।[10] 'ओउम नमः शिवाय' से आरम्भ इस लेख में परमारवंशी उदयादित्य (जो भोज का सम्बन्धी था) के शासन काल में 'जनक' नाम के एक तेली पटेल द्वारा एक देवालय तथा वापी (बावड़ी) के निर्माण का ब्यौरा है, साथ ही इसमें यह भी वर्णित है कि जनक पटेल ने चार पल दीपक के लिये तेल और एक मोदक (लड्डू) प्रतिवर्ष मंदिर पर देने का संकल्प किया था। इसी उदयादित्य के पूर्वज सीयक परमार द्वितीय (945-972 ई.) ने माही नदी पार एवं गुजरात क्षेत्र में प्रतिहार सामन्त योगराज को परास्त कर इस क्षेत्र को हस्तगत किया था। इसी क्रम में उक्त वर्णित उदयादित्य परमार ने राजस्थान-गुजरात का क्षेत्र हस्तगत कर अपनी पुत्री श्यामादेवी का विवाह मेवाड़ के गुहिल राजकुमार विजय सिंह से किया था। इस प्रमाण से यह संभावना भी विवेचन योग्य मानी जा सकती है कि सिरोही जिले की प्राचीन चन्द्रावती के तत्कालीन परमार नरेश से उदयादित्य का क्या कोई सम्बन्ध रहा होगा ? यद्यपि इस तथ्य की पुष्टि अभिलेखीय साक्ष्य के अभाव में नहीं हुई है। परन्तु आबू क्षेत्र के (सिरोही क्षेत्र) वि.सं. 1220/1063 ई. का एक लेख धारावर्ष शासक का मिलता है, जो परमारवंशी था। इसे धार परमार तथा चन्द्रावती नाथ नाम से प्रसिद्ध बताया जाता है, परन्तु धार परमार से इस धारावर्ष परमार शासक का सम्बन्ध क्या रहा, इसकी पुष्टि होना शेष मानी जा सकती है।[11]

इसी नगर के शांतिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर के निर्माण काल का एक शिलालेख विक्रम की 11वीं सदी का है। इसी क्षेत्र में अनेक जैन समाधियां भी मिली है[12] जिनमें से एक वि.सं. 1066 के माघ माह की है, जो जैन मुनि मानदेव के शिष्य श्रीमन्तदेव की है। दूसरी वि.सं. 1180 की मुनि देवेन्द्र आचार्य की तथा तीसरी वि.सं. 1209 की है जो मूल संघ के आचार्य कुमार देव की है।

इसी नगर के हृदय स्थल पर स्थित 10वीं सदी का एवं भारत के प्राचीन तथा सुप्रसिद्ध मंदिरों में से एक 97 फीट ऊंचा यहां के (मूल पद्मनाभ मंदिर) सूर्य मंदिर का एक

वि.सं. 1632 का लघु लेख[13] इसके मध्य के शिखर भाग में लगा है, जो यहां के आवश्यक जीर्णोद्धार के बारे में जानकारी देता है। इसी मंदिर के मुख्य प्रवेश द्वार पर एक और शिलालेख वि.सं. 1872 का है,[14] जो इसके पूर्व मध्य भाग के जीर्णोद्धार का है। यह लेख तत्कालीन कोटा राज्य के महाराव एवं उनके दीवान झाला जालिम सिंह (प्रथम) के काल में उक्त मंदिर के जीर्णोद्धार के पश्चात् धार्मिक विधि (पूजापाठ) उद्यापन कराने के ब्यौरे का है जिसमें नगर की बस्ती के साहुकारों सहित पटेल 'ऊदोपेमो, ''कारकून पंचौली, होलाराम, आदि नामों का उल्लेख है। यहां से प्राप्त एक और महत्वपूर्ण शिलालेख संवत् 1853/1796 ई. का कोटा महाराव उम्मेद सिंह, दीवान एवं फौजदार झाला जालिम सिंह और उनके पुत्र कुंवर माधोसिंह झाला के काल का है, जिसमें इनकी सम्मिलित आज्ञाओं द्वारा (झालरापाटन के स्थापना के बाद) इसमें धीरे-धीरे बसने वाले निवासियों, पटेलों, पटवारियों, महाजनों और अनके जातियों के व्यक्तियों को यहां (झालरापाटन में) घर बनाकर निवास कराने का उल्लेख है। इसी लेख में इन वासियों को 'स्वत्वप्रदान' का कुछ हवाला, माफी और बेगार की क्षमा का भी उल्लेख है।

नगर के उत्तरी छोर पर स्थित बहुचर्चित धार्मिक स्थल गिन्दौर के ठाकुर सा. की बावड़ी पर 11 पंक्तियों का संवत् 1840 का एक शिलालेख है।[15] श्री गणेशाय नमः से आरम्भ इस शिलालेख में ठाकुर श्री मानदेव द्वारा संवत् 1843 में यहां एक बावड़ी के निर्माण एवं परिवार के ठाकुरों के नामोल्लेख व सम्बन्धों का विवरण है। झालरापाटन के निकट सेमली नामक एक गांव में छह छोटे अभिलेख प्राप्त हुए है[16] जिनसे रामदेशिकों (प्रदेश के गर्वनरों का) का नामोल्लेख प्राप्त होता है, यथा- सांगण, सुमकर, राहु (राहुल) जस्सा आदि। इसी गांव में एक स्थान पर 11वीं सदी के एक अन्य शिलालेख में[17] राजा श्री कुसुमदेव और उसके पिता श्री पाल्हणदेव का नामोल्लेख है। 12वीं सदी के एक अन्य लेख में दाईया राऊत भीवसिंह व उसके पुत्र राऊत उदा का नामोल्लेख है, परन्तु इन लेखों में इनके वंश का उल्लेख अंकित नहीं है। लेखक की इस बारे में यहां यह मान्यता भी मानी जा सकती है कि 10वीं से 12वीं सदी तक इस भू-भाग में मालव के परमारों का अधिपत्य रहा है। अतः सम्भव है उक्त दोनों लेखों में वर्णित नाम परमारवंश के किसी सामन्त या राजन्य वर्ग के हो। क्योंकि झालरापाटन का यह क्षेत्र आरम्भ से ही परमारों के प्रभाव में रहा है। इन लेखों पर व्यष्टि भावी शोध की संभावना भी है।

मुख्यालय से 4 किमी. दूर उत्तर की ओर स्थित गागरोन दुर्ग में सूफी सन्त ख्वाजा हमीदुद्दीन चिश्ती की दरगाह के दो प्रमुख शिलालेखों का वर्णन इतिहासकार प्रो. गोपीनाथ

शर्मा ने किया है।[18] प्रथम लेख 1694-95 ई. का है जो दरगाह के भीतर जामी मस्जिद का है। लेख के अनुसार उक्त स्थल को नवाब आजम खां के पौत्र इरादत खां ने बनवाया और उसने पांच बहलोली सिक्के इसके खर्चे के लिए अनुदान के रूप में दिये थे। इनमें से तीन इमाम के लिए, एक मेहतर के लिए व आधे-आधे पानी तथा रोशनी के खर्चे के थे। लेख में यह भी उल्लेख है कि जो भी हजरत शाह की खिदमत करेगा उसकी मुरादें पूरी होगी। इसी लेख में शेख फिरोज का भी नाम अंकित है जिसके निरीक्षण में यह कार्य हुआ था और जो इस दुर्ग के अधिकारी पद पर नियुक्त था। इसी दरगाह की मेहराब में 1694-95 ई. का एक और शिलालेख है। इसमें उल्लेख है कि इरादत खां (जो सरकारी सेवक था) ने चौकियों (गांवों) का लगान, सालाना (वार्षिक) उर्स के लिये भेंट किया और यह भी उल्लेख किया कि इस बारे में कोई हस्तक्षेप नहीं करें। इसी दरगाह में फारसी का एक अन्य शिलालेख 1640 का प्राप्त होता है। इसके अनुसार- मियां ईशा (उसके पुत्र अलावलखां, थानेश्वर कन्नौजवासी) द्वारा इस दरगाह में दरवाजा बनाने का उल्लेख है। लेख के अनुसार यह निर्माण कार्य सुल्तान राठौड़ के अमल (गर्वनर काल) में सम्पादित हुआ। ज्ञातव्य है कि सुल्तान राठौड़ बीकानेर के शासक कल्याणमल राठौड़ का पुत्र व इस दुर्ग का तत्कालीन हाकिम था। उक्त सभी लेख फारसी भाषा के है।

गागरोन के पश्चात् खीची राजपूत शासकों के प्रमुख शासित स्थल महू (बोरदा) में स्थित एक भग्न मंदिर के पास कार्तिक कृष्ण 1 सोमवार वि.सं. 1416 का शिलालेख है जिसके अनुसार उक्त वर्णित मंदिर का निर्माता दामोदर शाह नामक व्यक्ति रहा है।[19] संभवत यह इस नगर का श्रेष्ठी रहा होगा। इस स्थान से कुछ दूरी पर काले पर्वत के नीचे रातादेवी का मध्ययुगीन मंदिर स्थित है। यहां सती चबूतरे है, जिन पर शिलालेख स्थापित है, परन्तु समय की मार और उपेक्षा से ये सभी अपनी मूल आभा से नष्ट होते देखे जा सकते है। इनमें से कुछ ब्यौरा इस प्रकार पढ़ने में आता है।[20]

एक शिलालेख वि.सं. 1550 का है जिस पर राजश्री महाराज गंगादास का नाम उत्कीर्ण है।

इसी के निकट एक छत्री है जिसमें एक शिलालेख पौष शुक्ला 11 सोमवार वि.सं. 1578 का है। इसी लेख में संवत् 1578 वर्ष ग्यारस सोमवार के दिन राजा श्री राव श्रीय के देवलोक जाने का हवाला है। यहीं पर पांच रानियों के सती होने का भी उल्लेख है। इसमें उक्त राव श्री को गागरोन का राजा लिखा गया है। दो शिलालेख वि.सं. 1543 व वि.सं. 1546 के भी है। एक शिलालेख वैशाख शुक्ला 10, संवत् 1516 का है, जो रावजी

श्री गंगासिंह के पुत्र श्रीरायजी से सम्बन्धित है। यहां के अन्य शिलालेखों में क्रमशः वि.सं. 1565 राज हणवन्त सिंह का, वि.सं. 1558 हरीसिंह का, वि.सं. 1566 राजा श्योसिंह के पुत्र देवसिंह का, वि.सं. 1555 राजा श्योदत्त सिंह का तथा एक अन्य लेख वि.सं. 1551 का श्योसिंह के काल से सम्बद्ध है। इन सभी शिलालेखों के शिखर भाग में सती होने वाली रानियों की उत्कीर्ण मूर्तियों पर मुकुट सुशोभित है। यहां के कुछ अन्य लेखों में वि.सं. 1504, 1511, 1513, 1551, 1558, 1565, 1566 के उल्लेख प्रचुरता से प्राप्त होते है। इन्हीं लेखों में एक शिलालेख वि.सं. 1578 का तो अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसमें अंकित रानियों के गोत्रों से तत्कालीन खीची राजाओं की ख्याति और उनके वैवाहिक सम्बन्धों की जानकारियों प्राप्त होती है। इस लेख के अनुसार इन राजाओं ने तत्कालीन राजपूताने के प्रसिद्ध राजपूत राजाओं क्रमशः सिसोदिया, गौड़ भाटी, सोलंकी आदि की कन्याओं से विवाह किया। अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि महु नामक यह स्थान (रियासत) उस समय उक्त राजाओं की रियासत में बराबर की सम्मान प्राप्ति में हकदार रही है। उक्त सभी लेख खीची राजपूत शासकों के है।

मुख्यालय से 35 किमी दूर पूर्व की ओर स्थित खानपुर कस्बे के निकट 'चांदखेड़ी का जैन मंदिर' है। इस मंदिर की मूल मूर्ति (आदिनाथ स्वामी की) भू-गर्भ में प्रतिष्ठित है, जो मुग़लों के कोपभाजन से बचाव के लिए किया गया कार्य था। इस मूर्ति पर संवत् 512 अंकित है परन्तु इसका मूल आधार ज्ञात नहीं हो पाया है। इस मंदिर के संवत् 1746 माघ मास शुक्ल पक्ष सोमवार का एक शिलालेख उल्लेखनीय है,[21] जिसमें बादशाह औरंगजेब का नामोल्लेख है और इस क्षेत्र की गणना खीचीवाड़ा प्रदेश के अन्तर्गत की गई है। लेख में उक्त मूर्ति की प्रतिष्ठा श्री जिनेन्द्र आचार्य कनकमणि द्वारा भूतल में कराये जाने का उल्लेख है।

मुख्यालय से 110 किमी. दक्षिण में स्थित डग कस्बे में डगेश्वरी माता के प्राचीन मंदिर से इसके निर्माण का लेख वि.सं. 1202 का तथा कस्बे के बाहर बने रानी के मकबरे के निर्माण का लेख वि.सं. 1732 का है, उल्लेखनीय है।

डग के निकट क्यासरा ग्राम में प्राचीन कायावर्णेश्वर महादेव मंदिर के पृष्ठभाग में एक चबूतरे पर स्थापित दो शिलालेख, जो तन्त्रनुरूप कंवलपूजा के है, अत्यन्त महत्वपूर्ण है।[22] ये दोनों शिलालेख दो अविवाहित शिव भक्तों द्वारा स्वयं के शीश फूल काटकर यहां के कायावर्णेश्वर महादेव की कंवल पूजा (जिसे तन्त्रशास्त्र में सिर काटकर अर्पित करना कहते है) में समर्पित करने के है।

प्रथम शिलालेख शम्भू जी बाड़ेजा, ग्राम भड़का निवासी डग तथा मायाराम आद्यगौड ब्राह्मण ग्राम लाखाखेड़ी, परगना गंगधार का है। इसमें उल्लेख है कि ये दोनों मित्र थे तथा 23-24 वर्ष की आयु में (विवाह पूर्व) इन्होंने मिती फाल्गुन बदी 14 वि.सं. 1888 को एक साथ तलवार से अपने सिर काटकर यहां 'कंवल' पूजा दी। लेख में कोटा रियासत के महाराव किशोर सिंह के नाम होने का भी हवाला है।

द्वितीय लेख शंकर मेवाड़ा सुथार ग्राम क्यासरा, परगना डग तथा गमेर जी चर्मकार ग्राम क्यासरा, परगना डग। वे दोनों मित्र थे, इन्होंने रात भर इन महादेव के सामने भजन गाये तथा ज्येष्ठ सुदी 3 रविवार वि.सं. 1979 को प्रात:काल स्वयं के सिर तलवार से काटकर यहां कंवल पूजा में अर्पित किये। लेख में झालावाड़ के महाराज राणा भवानीसिंह के शासन के समय का उल्लेख है। सारत: ये दोनों शिलालेख शिव उपासना व शैवतन्त्र के प्रति समर्पित भावों के तत्कालीन जाज्वल्यमान उदाहरण है।

झालावाड़ नगर की उत्तरी बस्ती से प्राप्त तथा स्थानीय संग्रहालय में संरक्षित एक शिलालेख, जो मिती आसोज सुदी, दसमी सोमवार वि.सं. 1877/1820 ई. का है।[23] मूलत: कोटा महाराव किशोर सिंह तथा उनके दीवान झाला जालिम सिंह (प्रथम) व उनके पुत्र झाला माधोसिंह द्वारा जारी शासकीय आदेश से सम्बन्धित है। इस शिलालेख का उद्देश्य इस क्षेत्र को आबाद कराने हेतु महाजनों, व्यापारियों व सभी जातियों के व्यक्तियों, कृषकों आदि से यहां आकर बसने (रहने) का है। लेख में वर्तमान झालावाड़ नगर का पूर्व नाम 'उम्मेदपुरा की छावनी' अंकित है। इस शिलालेख में उक्त वर्णित क्षेत्र में बसने वाले निर्धनों और श्रमिकों को बेगार प्रथा और बलात श्रम से मुक्ति प्रदान कराये जाने का उल्लेख है साथ ही इनके उल्लंघन करने पर सजा देने की चेतावनी का भी हवाला है। इसके अलावा इसमें कृषकों की समस्या व उनकी बंधक मुक्ति के लिये उन्हें अभय प्रदान का भी वर्णन है।

निष्कर्षत: प्रस्तुत आलेख झालावाड़ क्षेत्र से उपलब्ध उन प्रमुख शिलालेखों (5वीं सदी से 19वीं सदी) पर केन्द्रित है जो आज भी अल्पज्ञात तथा कुछ अप्रकाशित है एवं राष्ट्रीय व राज्य पुरातत्त्व, इतिहास व अभिलेख संस्कृति के सांस्कृतिक अवदानों में अपना वैशिष्ट्य प्रदर्शित कर सकने में पूर्णतया समर्थ हो सकते है क्योंकि इनमें विभिन्न निर्माणों, आज्ञाओं, सामन्ती व्यवस्था, उत्सर्ग, धर्म, दर्शन, वंश, राज्य व्यवस्था की प्रामाणिक जानकारी तथा उनमें वर्णित अनेक राज्यवंशों के प्रभाव क्षेत्र का वर्णन है। इन शिलालेखों के अभिज्ञान से तत्कालीन युगों की अनेक संस्कृतियों का अन्धकार में रहा पक्ष उद्भासित हो सकता है। अत: इन्हें संरक्षित कर इतिहास के कई अचर्चित तथ्यों व

कालखण्डों को समझा जा सकता है तथा इनके माध्यम से इतिहास की अनेक कड़ियां जुड़ सकती है। इन लेखों से मध्ययुगीन अनेक शासकों के राज्य सम्बन्ध तथा अनेक गौत्रों से विवाह सम्बन्धों का भी बोध होता है। पुरातत्त्व विभाग द्वारा यदि समय रहते हुए इन लेखों का संरक्षण, वायन तथा प्रकाशन हो जाये तो अतीत के ये प्रत्यक्ष पाषाणी प्रमाण हमारे देश की शोधार्थी नवपीढ़ी के लिये पठनीय व उपयोगी सिद्ध हो सकते है।

संदर्भ

1. गिरिजाशंकर मिश्र, (अनु.) *भारतीय अभिलेख संग्रह,* भाग-3 राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1972, संख्या 17, पृ. 96; चन्द्रभूषण त्रिवेदी, *दशपुर,* वर्ष 1972, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल (म.प्र.), पृ.112
2. वर्णित अभिलेख उपेक्षित परन्तु पठनीय है। इन लेखों का पठन प्रथम बार झालावाड़ राज्य के विद्वान पुरातत्त्वविद् और झालावाड़ राजकीय पुरातत्त्व संग्रहालय में वर्ष 1915 ई. के दौरान प्रथम क्यूरेटर रहे (स्व.) पं. गोपाललाल व्यास ने किया था। यह लेख विद्वान डॉ. एस.आर.खान (कोटा) के संग्रह में संरक्षित है।
3. वही
4. जी ब्यूहलर, 'इंस्क्रिप्शन्स ऑफझालरापाटन चन्द्रावती', *इण्डियन एण्टीक्वेरी,* (संपा.) बर्जेसने, भाग-5, जून- 1876, पृ. 180-81
5. (1) ए.कनिंघम, *आर्कियोलॉजीकल सर्वे ऑफ इण्डिया,* भाग 2, गवर्नमेन्ट प्रेस ऑफ इण्डिया, कलकत्ता, पृ. 268
   (2) ए. कनिंघम, *एन्युअल रिपोर्ट ऑन इण्डियन एपीग्राफी,* 1962-63 ई., सिरियल 861-70, गवर्नमेन्ट प्रेस ऑफ इण्डिया, कलकत्ता, पृ. 146-147
6. एस.आर. खान, *हाड़ौती के बोलते शिलालेख,* हाड़ौती शोध संस्थान, कोटा (राज.), 1998, पृ. 242
7. *एन्युअल रिपोर्ट,* पूर्वोक्त, 1970-71 ई., सिरियल 3044, पृ. 107
8. *प्रोग्रेस रिपोर्ट ऑफ आर्कियोलॉजीकल सर्वे ऑफ वेस्टर्न इण्डिया,* गवर्नमेन्ट प्रेस ऑफ इण्डिया, कलकत्ता, 1905-06 ई. में 'झालरापाटन' का अभिलेख संख्या 6 दृष्टव्य।
9. कैलाशचन्द जैन, 'झालरापाटन का प्राचीन वैभव', *अनेकान्त शोध पत्रिका,* वर्ष-15, वीर सेवा मंदिर नई दिल्ली, 1968, पृ. 281

10. (1) *जर्नल एण्ड प्रोसिडिंग्स ऑफ द रॉयल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बंगाल,* भाग-10, अंक-6, वर्ष 1914 ई., पृ. 241-43, प्रकाशन-अज्ञात। इस संदर्भ का द्वितीय मूल स्रोत दृष्टव्य- पं. विश्वेश्वरनाथ रेऊ, *प्राचीन भारत के राजवंश,* प्रथम भाग, हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकार कार्यालय, मुम्बई, 1920 ई., पृ. 131-32

(2) मायारानी आर्य, ''मालवा की परमार कला एवं स्थापत्य'', अप्रकाशित पी-एच.डी. शोध प्रबन्ध, वर्ष 1972 ई., विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, पृ. 133

11. सन्दर्भ हेतु देखिए विश्वेश्वरनाथ रेऊ, *प्राचीन भारत के राजवंश,* पृ. 77 से 81
12. कैलाशचन्द जैन, पूर्वोक्त, पृ. 281-82
13. रामवल्लभ सोमानी द्वारा रचित अज्ञात लेख, *वरदा* (शोध संस्कृति पत्रिका), वर्ष-17, अंक-1, जनवरी-मार्च 1974 ई., साहित्य समिति, बिसाऊ (चूरू), पृ. 8
14. हस्तलिखित लेख (स्व.) पं. गोपाललाल व्यास, उक्त
15. स्वयं लेखक ललित शर्मा ने इस लेख का पठन किया है।
16. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, *एन्युअल रिपोर्ट ऑफ राजपूताना म्यूजियम,* अजमेर, 1913-14 ई., पृ. 2
17. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, *एन्यूअल रिपोर्ट ऑफ राजपूताना म्यूजियम,* अजमेर, वर्ष 1912-13 ई. पृ. 2
18. गोपीनाथ शर्मा, *राजस्थान के इतिहास के स्रोत,* भाग-1, तृतीय संस्करण, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 1995, पृ. 231-32
19. ज्ञानेन्द्र पथिक, 'झालावाड़ के पुराभिलेखों की जीवन्ता', *आचार्य रामचन्द्र शुक्ल स्मारिका,* रामचन्द्र शुक्ल जन्म शताब्दी समारोह समिति, झालावाड़, 1986, पृ. 11
20. इन सभी लेखों का पठन स्वयं ललित शर्मा ने किया है तथा लेख पर ऊकेरी हुई आकृतियों के रेखाचित्र भी तैयार किये है। यह लेख वर्तमान में उपेक्षित है। बी.एन. ढोढियाल, *झालावाड़ जिला गजेटियर,* डायरेक्टर ऑफ डिस्ट्रिक्ट गजेटियर विभाग, जयपुर, 1964, पृ. 295
21. मथुरालाल शर्मा, *कोटा राज्य का इतिहास,* भाग-1, परिशिष्ट संख्या-11, उम्मेद प्रेस, कोटा, वि.सं. 1996

22. स्वयं ललित शर्मा द्वारा पठित लेख।

23. हस्तलिखित लेख, (स्व.) गोपाललाल व्यास, उक्त।

'अनहद' जैकी स्टूडियो,
15-मंगलपुरा, झालावाड़ (राज.)